International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

सोशल मीडिया की संस्कृति का पैटर्न

डॉ. जितेंद्र कुमार भगत
असिस्टेंट प्रोफेसर
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश:

सभ्यता और संस्कृति किसी समाज का ढॉचा होता है और इनका आपसी रिश्ता काफी संश्लिष्ट होता है। सरल शब्दों में कहें तो सभ्यता का संबंध नगरीय व्यवस्था और विकास से है जबकि संस्कृति वहां के निवासियों की परंपरा, रीति-रिवाज, संस्कार, खान-पान, वेष-भूषा, भाषा आदि के रूप में मौजूद होता है। सभ्यता के इतिहास में दो-तीन हजार साल में इतना तीव्र परिवर्तन नजर नहीं आता, जितना विगत दो-तीन सौ सालों में बदलाव देखा गया है। सोशल मीडिया इंटरनेट युग की देन है। इसने विगत दो दशकों में संस्कृति में गहरा हस्तक्षेप किया है। प्राचीन समाज समूह में रहता था और संयुक्त परिवार की परंपरा थी। आधुनिक युग में यह टूटकर एकल परिवार में तब्दील हो गया। सोशल मीडिया ने इस एकल परिवार को एकांत परिवार में तब्दील कर दिया है जहां घर के सदस्य ही एक दूसरे से अपरिचित अनजान की तरह रह रहे हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अब इंटरनेट में समा गया है। इससे एक नई तरह की संस्कृति का जन्म हो रहा है पर यह अनगढ़ संस्कृति है, जहां सामाजिकता और सौहार्द, आत्मीयता और मिलनसारिता बीते जमाने की बात लगती है। प्रकृति से संबंध खत्म होता जा रहा है।

आंदोलन का स्वरूप भी बदला है। लोग वर्चुअल क्रांति में रूचि ले रहे हैं। इस छद्म क्रांति से समाज के वास्तविक मुद्दों को आत्मीयता और गंभीरता से उठाने में संकट उत्पन्न हो गया है। सेल्फी युग ने सेल्फ का विस्तार नहीं किया है, बल्कि उसे तेजी से संकुचित किया है। अब 'विरोध' आंदोलन के बजाए इवेंट या मामूली प्रदर्शन बनकर रह गए हैं। प्रोटेस्ट मात्र फेसबुक पर तैरनेवाली चीज रह गई है। जहां युद्ध और आतंकवाद है, वहां सोशल मीडिया बैन है। देखने में ऐसा लगता जरूर है कि इससे मदद मिलती है लेकिन कोई ऐसा तंत्र नहीं है जिनसे जरूरतमंद तक पहुँचा जा सके या उनकी आवाज सुनी जा सके। जो मदद पहुँचती है उसका प्रतिशत नगण्य है। सोशल मीडिया के नाम पर जिन जन आंदोलनों की चर्चा की जाती है वह संख्या में बहुत कम है और दुनिया भर में समस्याएँ सोच से कहीं ज्यादा हैं। यह संकट सांस्कृतिक स्तर पर ज्यादा है।

यंत्र और नये तकनीक सभ्यता की ऊपज है और उससे निर्मित पैटर्न आधुनिक समाज की संस्कृति। पैटर्न में एक खास तरह की एकरूपता होती है। सकारात्मक अगर कुछ है तो यही कि इस पैटर्न ने समाज के वर्गाधारित पैटर्न को तोड़ा है। अमीर, गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-ग्रामीण, स्त्री–पुरूष, बुजर्ग

IJSRST2074116 | Received : 05 March 2018 | Accepted : 28 March 2018 | March-April-2018 [(4)7 | 1043-1049]

व बच्चे- सभी एक ही पैटर्न में ढले नजर आते हैं। इस पैटर्न ने कई सीमाएं तोड़ी हैं। बाजार एक ऐसा क्षेत्र है जहां संस्कृति का एक रूप बहुत जल्दी पकड़ में आ जाता है और यह उस पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व भी करता है। परंपरागत बाजार का नष्ट होना संस्कृति के नष्ट होने जैसा है। अब सोशल मीडिया ने ई-कॉमर्स बाजार खोल दिया है। सोशल मीडिया ने भाषा को भी एक नया संस्कार दिया है। इस तरह सोशल मीडिया की वजह से संस्कृति का एक नया पैटर्न उभरकर सामने आया है।

बीज शब्द:
यांत्रिक पैटर्नवाद, सेल्फी युग, ई-कॉमर्स, वर्चुअल क्रांति , सभ्यता, संस्कृति , एकल परिवार, एकांत परिवार।

परिचय:
सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे से संपृक्त हैं और एक दूसरे के सापेक्ष हैं। आसान शब्दों में कहें तो सभ्यता समाज का बाह्य ढाँचा होता है और संस्कृति उस समाज का आंतरिक ढाँचा, जो परंपरा, रीति-रिवाज, संस्कार, खान-पान, वेष-भूषा, भाषा आदि के रूप में मौजूद होता है। काल के लंबे अंतराल में अपने परिवेश के घात-प्रतिघात से संस्कृति का निर्माण होता है। वर्तमान संस्कृति अपने समय की राष्ट्रीय नीति , राजनीति , अर्थव्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, धार्मिक उथल-पुथल से प्रभावित हो रही है और भविष्य में इसके निश्चित स्वरूप को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभा रही है। सभ्यता के इतिहास में दो-तीन हजार साल में इतना तीव्र परिवर्तन नजर नहीं आता, जितना विगत दो-तीन सौ सालों में बदलाव देखा गया है। सोशल मीडिया या इंटरनेट तकनीक ने इस गति को और तीव्र किया है। 'तकनीक का उपयोग और उसकी निर्भरता निरंतर बढ़ती जा रही है और यह अत्यंत द्रुत गति से हो रहा है, इतना तीव्र कि जब तक हम एक तकनीक को समझते हैं तब तक एक दूसरी तकनीक आ जाती है। एल्विन टोफ्लर ने इसी स्थिति को 'फ्यूचर शॉक' कहा है जहां कम समय में अधिकाधिक परिवर्तन हो रहा है।'[1]

हमारी संस्कृति की एक बहुत बड़ी नीधि थी- संयुक्त परिवार। आधुनिक युग में यह टूटकर एकल परिवार में तब्दील हो गया। सोशल मीडिया ने इस एकल परिवार में सेंध लगाया और उसे तोड़कर आधा कर दिया। आधा मतलब, परिवार में लोग तन से उपस्थित हैं मगर मन से अनुपस्थित। अकेले इस पैटर्न ने संस्कृति का जितना नुक्सान किया, उतना किसी और ने नहीं। घर में ठहाके लगने बंद हो गए। प्रदूषण और असुरक्षा के नाम पर बच्चों को घर में बिठाया जाने लगा और उन्हें एक मोबाइल पकड़ा दिया गया। बच्चे बाहर खेलने से कतराने लगे, सेहत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा। बाजार में झोला लेकर लोगों ने निकलना बंद कर दिया या कम कर दिया। परिवार में मिलने-जुलने की परंपरा खत्म होने लगी, मेहमानों का आना-जाना खत्म-सा होने लगा। संयुक्त परिवार से एकल परिवार और एकल परिवार से एकांत परिवार में संचरण एक दुखद परिघटना है। अब समाज का सांस्कृतिक विन्यास उस ढंग से निर्मित नहीं हो सकता जो सामूहिक चेतना और सामूहिक आवाजाही के बीच विकसित हुआ करता था।

---

[1] सोशल मीडिया, संपर्क क्रांति का कल, आज और कल, स्वर्ण सुमन, पृष्ठ. 11

सामूहिकता के इस अभाव में जिस संस्कार का निर्माण होगा, उसे संस्कृति कहना भी अनुचित होगा, क्योंकि यह समूह से नहीं, एकांत और उसके परिणाम से निर्मित होगा। हम रोबोट नहीं होंगे लेकिन उससे कम नहीं होंगे। इसी यांत्रिकता से बचने के लिए लोक चेतना, लोक संस्कृति , लोक साहित्य, लोक गीत की तरफ लौटने, उसमें रचने-बसने की कवायद इधर ज्यादा नजर आती है। नि:संदेह यांत्रिक और भौतिक संस्कृति से बचने के लिए यह सहज सरल उपाय है लेकिन शहर को गांव और प्रकृति की तरफ ले जाना अब दुश्कर प्रतीत हो रहा है। मीडिया और अखबार खबरों की दुनिया है लेकिन यह परंपरागत रूप में वास्तविक समूह के बीच मौजूद था और उसके विकास प्रक्रिया में एक पूरा चैनल मौजूद है। प्रेस के आने के बाद ही नए तरह की संप्रेषण व्यवस्था कायम हुई। उससे पूर्व साहित्य और विमर्श या तो पांडुलिपि में मौजूद था या फिर चर्चाओं में। फिर अखबारों, पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा। मगर सोशल मीडिया में बहुत-सी कड़िया नदारत हैं।

सोशल मीडिया इंटरनेट युग की देन है। इसने विगत दो दशकों में संस्कृति में गहरा हस्तक्षेप किया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अब इंटरनेट में समा गया है। इससे एक नई तरह की संस्कृति का जन्म हो रहा है पर यह अनगढ़ संस्कृति है जहां सामाजिकता और सौहार्द, आत्मीयता और मिलनसारिता बीते जमाने की बात लगती है। हम स्क्रीनसेवर के जरिए प्रकृति को देख रहे हैं, एक स्टील प्रकृति, जिसमें रंग तो बहुत है मगर वह जीवंत नहीं है। आचार्य शुक्ल ने जिस अनुभूति पर बल दिया था, वह यहां से मीसिंग है। पदार्थ और जगत के साथ रागात्मक वृत्ति को उन्होंने सहृदयता से जोड़ा था। तात्पर्य यह है कि चरम अनुभूति तक पहँचने का अवकाश नहीं रह गया है। घटनाएँ जिस तीव्रता से बदल रही हैं कि स्थायी भाव अपना रूप ग्रहण ही नहीं कर पाती हैं।

तात्पर्य यह है कि सोशल मीडिया ने एक अलग क्लास की रचना की है। इसे शुद्ध यांत्रिक संस्कृति कहना बेहतर होगा। यंत्र और नये तकनीक सभ्यता की ऊपज है और उससे निर्मित पैटर्न आधुनिक समाज की संस्कृति। हाथ में मोबाइल लेकर चलना आज के मनुष्य का मात्र फैशन नहीं, एक पैटर्न बनता जा रहा है। पैटर्न में एक खास तरह की एकरूपता होती है। इसका सकारात्मक पहलू यही है कि इस पैटर्न ने समाज के वर्गाधारित पैटर्न को तोड़ा है। अमीर, गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-ग्रामीण, स्त्री–पुरूष, बुजर्ग व बच्चे- सभी एक ही पैटर्न में ढले नजर आते हैं। एक अमीर इतनी आसानी से कभी एक मजदूर को एक फोन पर नहीं बुला सकता था, न सामंती समय में, न बर्बर युग में। इसने टाइम और स्पेस की धारणा में बड़ा बदलाव किया है। मार्क्सवाद हो या समाजवाद, धर्मवाद हो या कोई अन्य मतवाद, कई सालों के लंबे प्रयास के बाद भी ये वो चीज हासिल नहीं कर पाये, जो इस यांत्रिक पैटर्नवाद ने अनायास ही हासिल कर लिया। इसने कई सीमाएं तोड़ी और आवाज भी नहीं हुई।

सोशल मीडिया नाम का ही सोशल है। यह हमें सोशल नहीं बनाता बल्कि सूचनाओं के स्तर पर केवल अपडेट रखने का काम करता है। आज के समय में होनेवाले आंदोलनों का स्वरूप भी इसलिए कुछ

अलग अंदाज का है। लोग वर्चुअल स्पेस में जी रहे हैं और वहीं से क्रांति कर रहे हैं। इस छद्म क्रांति से समाज के वास्तविक मुद्दों को आत्मीयता और गंभीरता से उठाने में संकट उत्पन्न हो गया है। सेल्फी युग ने सेल्फ का विस्तार नहीं किया है, बल्कि उसे तेजी से संकुचित किया है। अब विरोध आंदोलन के बजाए इवेंट या मामूली प्रदर्शन बनकर रह गए हैं। प्रोटेस्ट मात्र फेसबुक पर तैरनेवाली चीज रह गई है। जहां युद्ध और आतंकवाद है, वहां सोशल मीडिया बैन है। देखने में ऐसा लगता जरूर है कि इससे मदद मिलती है लेकिन कोई ऐसा तंत्र नहीं है जिनसे जरूरतमंद तक पहुँचा जा सके या उनकी आवाज सुनी जा सके। जो मदद पहुँचती है उसका प्रतिशत नगण्य है। सोशल मीडिया के नाम पर जिन जन आंदोलनों की चर्चा की जाती है वह संख्या में बहुत कम है और दुनिया भर में समस्याएँ सोच से कहीं ज्यादा हैं। यह संकट सांस्कृतिक स्तर पर ज्यादा है। मीडिया को इसने लोकतांत्रिक बनाया है मगर इसमें संयम का अभाव है, दृष्टि का अभाव है। अराजक माहौल है जिसमें किसी निष्कर्ष पर आसानी से पहुँचा नहीं जा सकता।

हमारे साहित्य में बाजार को एक खतरनाक तत्व के रूप में अक्सर रूपायित किया गया है। इसे संस्कृति विरोधी चीज मान लिया गया है। बाजार कोई बुरी चीज नहीं है न ही इसने अभी जन्म लिया है। बार्टर सिस्टम बाजार का ही एक रूप था, बाद में धातु के सिक्के और कागज के रूपयों का प्रचलन आया। बाजार भी संस्कृति का एक हिस्सा है। यहीं से तय होती है खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा, बोलचाल, संवाद-वार्तालाप, तीज-त्योहार और धर्म-संप्रदाय के अनुसार दुकान एंव उनके बीच आपसी सामंजस्य। बाजार एक ऐसा क्षेत्र है जहां संस्कृति का एक रूप बहुत जल्दी पकड़ में आ जाता है और यह उस पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व भी करता है। हाट-बाजार, मेला, मॉल कल्चर ये सभी संस्कृति की झलक दिखाते हैं। इसलिए स्पष्टत: कहा जा सकता है कि इस बाजार का नष्ट होना संस्कृति के नष्ट होने जैसा है। अब सोशल मीडिया ने ई-कॉमर्स बाजार खोल दिया है, अमेजन, ईबे, स्नैपडील आदि। दिक्कत ये है कि सोशल मीडिया का बाजार अपना स्पेस बनाने के लिए आपके निजी सूचनाओं के साथ खिलवाड़ कर रहा है और उसका मनोवैज्ञानिक लाभ उठा रहा है। पहले का बाजार विज्ञापन के माध्यम से आप तक पहुँचता था, मगर अब वह आपतक आपकी निजी सूचनाओं के आधार पर पहुँच रहा है। निजता में इस प्रकार की सेंधमारी एक सांस्कृतिक संकट है। दूसरी दिक्कत आभासी दुनिया में ऐसी चीजों का होना है जिन्हें आप बिना छूए-परखे खरीदने का खतरा मोल ले रहे हैं।

सोशल मीडिया ने भाषा को एक नया संस्कार दिया है या यूँ कहें कि सोशल मीडिया ने भाषा का रूप बिगाड़ा है। सरलता, सुविधा और सहजता के नाम पर बेतुके और अनगढ शब्दावली के इस्तमाल को बढ़ावा दिया जा रहा है। शब्दों को तोड़मरोड़ कर लिखने की एक शैली विकसित हुई है। 'सोशल मीडिया की यह भाषा एक 'ग्लोबल भाषा' का रूप लेती जा रही है जहॉ 'नियम' की जगह 'संचार' महत्वपूर्ण दिखता है'।[2] साहित्य में इस भाषा को स्थान देना मजबूरी है लेकिन इसमें गंभीर मुद्दों को व्यक्त करना

[2] सोशल मीडिया, संपर्क क्रांति का कल, आज और कल, स्वर्ण सुमन, पृष्ठ.239

संभव नहीं है। भाषा सार्वभौम चीजों पर मशवरा देने का टूल है। इसलिए वह संस्कृति का वाहक है। असमर्थ भाषा पल भर के लिए चमकने और गुम हो जाने की चीज नहीं।

शिष्ट साहित्य से लेकर लोक साहित्य और लोक साहित्य से लेकर लोकप्रिय साहित्य मौजूदा आलोचना का विषय बन रहा है। देखा जाए तो सोशल मीडिया में इन सबने अपनी जगह बनाई है। इसी तरह भाषा, अपभाषा, बोली आदि ने भी सोशल मीडिया में अपनी जगह बना ली है। कुल मिलाकर सोशल मीडिया समाज और साहित्य के इन रूपों को ना केवल संजोने का कार्य कर रहा है बल्कि उन्हें एक आकार भी दे रहा है एक तरफ वह उसे स्थिरता प्रदान कर रहा है दूसरी तरफ मौजूदा संस्कृति को एक नए सांचे में गढ़ने का प्रयास भी कर रहा है।

संस्कार और संस्कृति , इनकी अर्थ छवियों में काफी समानता है। संस्कार कब संस्कृति में बदलने लगते हैं, इसका पता लगाना आसान नहीं। किसी भी संस्कृति को बुरा नहीं कहा जा सकता, अगर वह बहुत बड़े समुदाय द्वारा सहजता से अपनाया जा रहा हो। एक विज्ञापन में दिखाया गया है कि एक बड़े से डायनिंग टेबल पर तीन पीढ़ियां भोजन करने के लिए साथ बैठी हैं। सबसे बुजुर्ग सदस्य सोशल मीडिया अपडेट देखने के लिए टेबल के नीचे झुकता है, ऐन उसी वक्त पर बाकी सदस्य भी अपना अपना मोबाइल निकालकर देखने लगते हैं। संस्कार कहता है कि भोजन करते हुए कोई अन्य काम न करें, पर इससे न बडे बच पाये, न बच्चे। यह रोचक व्यंग्य बदलते संस्कार को दर्शाता है। संस्कृति को पुराने चश्में से देखा जाना उचित नहीं लेकिन संस्कार के साथ-साथ हर संस्कृति पुरानी होती जाती है। यह कहना मुश्किल है कि मौजूदा संस्कृति अपना रूप ग्रहण कर पायेगी या नहीं, या उससे पहले ही नये तरह के संस्कार के चपेट में आ जाएगी। इस प्रश्न का उत्तर समय के गर्भ में छिपा है।

निष्कर्ष:

सोशल मीडिया ने खबर को चौपाल, चाय-पकौड़े की दुकान से निकालकर एक सुगठित फ्रेम से सजा दिया है, जहॉ वह दृष्य और श्रव्य रूप में सर्वत्र मौजूद है। इसी से सिटीजन जर्नलिज़्म का जन्म हुआ। अब सोशल मीडिया पर सक्रिय हर प्रयोक्ता एक पत्रकार है। इस तरह सोशल मीडिया पर सूचनाओं का संजाल है जहॉ व्यक्तिकगत चीजों से लेकर हर मुद्दे छाये रहते हैं। हैबरमास[3] ने जिस पब्लिक स्फेयर की बात की थी उसने संस्कृति को नए सिरे से प्रभावित किया है। ग्लोबलाइजेशन, ग्लोबल विलेज से आगे निकलकर नेटवर्क सोसायटी की बात होने लगी है जहॉ लोग सिर्फ बाजार की जरूरतों के कारण आपस में नही जुड़े हैं, बल्कि अन्य सामाजिक कारण भी हैं। आपस में यह जुड़ाव डीजिटल जुड़ाव से ज्यादा कुछ नहीं, इसमें आत्मीयता पहले जैसी नहीं, स्निग्धता पहले जैसी नहीं। संस्कृति का आधार खिसक रहा है इसलिए वह नया रूप ग्रहण कर रही है। यह संस्कृति फिलहाल अरूप है, अनगढ है। यह अनगढ़ पैटर्न ही आज की संस्कृति को परिभाषित कर सकता है। समाजवेत्ताओं को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने

[3] सोशल मीडिया, संपर्क क्रांति का कल, आज और कल, स्वर्ण सुमन, पृष्ठ.46

की जल्दी नहीं करनी चाहिए। इस अनगढ संस्कृति को आकार लेने में वक्त लगेगा, हमें इसका इंतजार करना चाहिए। जिन संस्कृतियों से हम परिचित हैं, उन्हें बनने में सैकड़ो साल लगे हैं।

आधार ग्रंथ

1) सोशल मीडिया, संपर्क क्रांति का कल, आज और कल, स्वर्ण सुमन, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, प्रकाशन वर्ष 2014

****